International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 02(II), April - June, 2024, pp. 96-100

हिन्दी साहित्य में संत दादूदयाल का योगदान : सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक पाखंडों का विरोध

अजय कुमार शर्मा*

सार

भारतभूमि अनादिकाल से संतों एवं अध्यात्म के दिव्यपुरुषों की भूमि रहा है। यहां का कण–कण, अणु–अणु न जाने कितने संतों की साधना से आप्लावित रहा है। संतों की गहन तपस्या और साधना के परमाणुओं से अभिषिक्त यह माटी धन्य है और धन्य है यहां की हवाएं, जो तपस्वी एवं साधक शिखर–पुरुषों, ऋषियों और महर्षियों की साक्षी है। ऐसे ही एक महान संत थे दादू दयाल। वे कबीर, नानक और तुलसी जैसे संतों के समकालीन थे। वे अध्यात्म की सुदृढ़ परम्परा के संवाहक भी थे। भारत की उज्ज्वल गौरवमयी संत परंपरा में सर्वाधिक समर्पित एवं विनम्र संत थे। वे गुरुओं के गुरु थे, उनका फकड़पन और पुरुषार्थ, विनय और विवेक, साधना और संतता, समन्वय और सहअस्तित्व की विलक्षण विशेषताएं युग–युगों तक मानवता को प्रेरित करती रहेगी। निर्गुण भक्ति के माध्यम से समाज को दिशा देने वाले श्रेष्ठ समाज सुधारक, धर्मक्रांति के प्रेरक और परम संत को उनके जन्म दिवस पर न केवल भारतवासी बल्कि सम्पूर्ण मानवता उनके प्रति श्रद्धासुमन समर्पित कर गौरव की अनुभूति कर रहा हैं।

शब्दकोशः *पुरुषार्थ, विनय, विवेक, साधना, संतता, समन्वय, सहअस्तित्व।*

प्रस्तावना

दादू का जन्म गुजरात प्रांत के कर्णावती (अहमदाबाद) नगर में फाल्गुण सुदी अष्टमी संवत् 1601 ई. को हुआ था। संत दादू को जन्म के तत्काल बाद किसी अज्ञात कारण से इनकी माता ने लकड़ी की एक पेटी में उनको बंद कर साबरमती नदी में प्रवाहित कर दिया। कहते हैं कि लोदीराम नागर नामक एक ब्राह्मण ने उस पेटी को देखा, तो उसे खोलकर बालक को अपने घर ले आया। बालक में बाल सुलभ चंचलता के स्थान पर प्राणिमात्र के लिए करुणा और दया भरी थी। दादू ने बारह वर्ष तक सहज योग की कठिन साधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। भक्ति रस का पान करते हुए वे हर क्षण ईश्वर भक्ति में मग्न रहते थे। वे दया की साकार मूर्ति थे। अपने दुश्मनों के प्रति भी सदैव दयालु रहे। जिन्होंने इन्हें कष्ट दिया, उनका भी उपकार माना। इसीलिए लोग इनको दयाल नाम से पुकारने लगे और दादूजी दादूदयाल बन गये।

एक दिन का प्रसंग है कि दादूजी अपनी कोठरी में ध्यान लगाकर बैठे थे। ईर्ष्या और द्वेष के कारण कुछ ब्राह्मणों ने कोठरी के द्वार ईंटों से बन्द कर दिया। जब वे ध्यान से जागे तो उन्हें बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिला। वे पुनः ध्यान मग्न हो गये। कई दिनों तक ध्यानस्थ रहने के बाद वे तब बाहर निकल पाये जब

* शोधार्थी, (हिन्दी विभाग)।

लोगों को जानकारी हुई और उन्होंने बन्द द्वार खोला और द्वार बंद करने वालों के प्रति लोगों में इतना रोष पैदा हो गया कि उन्हें दण्ड देने पर उतारू हो गये। लेकिन दादूदयाल ने समझाकर कहा कि इनकी कृपा से ही मैं इतने दिनों तक भगवान् के चरणों में लौ लगाये रहा। अतः इन्हें दण्ड देने के बजाय इनका उपकार मानना चाहिए। एक बार अकबर बादशाह से फतेहपुर सीकरी में दादूदयाल की मुलाकात हुई। अकबर ने पूछा कि खुदा की जाति, अंग, वजूद और रंग क्या है? दादूदयाल ने दो पंक्तियों में इस प्रकार उत्तर दिया कि– इसक अलाह की जाति है, इसक अलाह का अंग। इसक अलाह औजूद है, इसक अलाह का रंग।।

अलौकिक पुरुष

दादू का विवाह हुआ और इनके घर में दो पुत्र और दो पुत्रियों का जन्म हुआ। इसके बाद इनका मन घर–गृहस्थी से उचट गया और ये जयपुर के पास रहने लगे। यहां सत्संग और साधु–सेवा में इसका समय बीतने लगा, पर घर वाले इन्हें वापस बुला ले गये। अब दादू–जीवनयापन के लिए रुई धुनने लगे। इसी के साथ उनकी भजन साधना भी चलती रहती थी। धीरे–धीरे उनकी प्रसिद्धि फैलने लगी। केवल हिंदु ही नहीं, अनेक मुस्लिम भी उनके शिष्य बन गये। यह देखकर एक काजी ने इन्हें दण्ड देना चाहा, पर कुछ समय बाद काजी की ही मृत्यु हो गयी। तबसे सब उन्हें अलौकिक पुरुष मानने लगे।

दादू धर्म में व्याप्त पाखण्ड के विरोधी

दादू धर्म में व्याप्त पाखण्ड के बहुत विरोधी थे। कबीर की भांति वे भी पण्डितों और मौलवियों को खरी–खरी सुनाते थे। उनका कहना था कि भगवान की प्राप्ति के लिए कपड़े रंगने या घर छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। वे सबसे निराकार भगवान की पूजा करने तथा सद्गुणों को अपनाने का आग्रह करते थे। आगे चलकर उनके विचारों को लोगों ने 'दादू पन्थ' का नाम दे दिया। इनके मुस्लिम अनुयायियों को 'नागी' कहा जाता था, जबकि हिन्दुओं में वैष्णव, विरक्त, नागा और साधु नामक चार श्रेणियां थीं। सत्व, रज, तम तीनों गुणों को छोड़कर वे त्रिगुणातीत बन गये थे। उन्होंने निर्गुण रंगी चादरिया रे, कोई ओढ़े संत सुजान को चरितार्थ करते हुए सद्भावना और प्रेम की गंगा को प्रवाहित किया और इस निर्गुणी चदरिया को ओढ़ा है। उन्हें जो दृष्टि प्राप्त हुई है, उसमें अतीत और वर्तमान का वियोग नहीं है, योग है। उन्हें जो चेतना प्राप्त हुई, वह तन–मन के भेद से प्रतिबद्ध नहीं है, मुक्त है। उन्हें जो साधना मिली, वह सत्य की पूजा नहीं करती, शल्य–चिकित्सा करती है। सत्य की निरंकुश जिज्ञासा ही उनका जीवन–धर्म रहा है। वही उनका संतत्व रहा। वे उसे चादर की भाँति ओढ़े हुए नहीं हैं बल्कि वह बीज की भाँति उनके अंतस्तल से अंकुरित होता रहा है।संत दादू समाज में फैले आडम्बरों के सख्त विरोधी थे। उन्होंने लोगों को एकता के सूत्र का पाठ पढ़ाया। उन्होंने भगवान को कहीं बाहर नहीं अपने भीतर ही ढूंढ़ा। स्वयं को ही पग–पग पर परखा और निखारा। स्वयं को भक्त माना और उस परम ब्रह्म परमात्मा का दास कहा। वह अपने और परमात्मा के मिलन को ही सब कुछ मानते। यही कारण है कि उनका जीवन दर्शन इंसान को जीवन की नई प्रेरणा देता है।

प्रेम एवं करुणा के अभाव में वेद–पुराण–कुरान पढ़ना बेकार

सतगुरु की कृपा जीव को ब्रह्म बना देती है। वैसे आज झूठे–पाखण्डी एवं सुविधावादी साधुओं की भरमार है, जो भ्रम, आडम्बरों और अंधविश्वासों की जड़ें मजबूत करते हैं, जो स्वयं ही विषय–वासनाओं के दास है। केवल मुख से राम का नाम लेते रहते हैं। लेकिन दादू दयाल इसके सख्त विरोधी रहे हैं और प्रतिक्षण राम के साथ रहने की बात करते हैं। चाहे गुफा में रहे अथवा पर्वत पर या घर में, सर्वत्र राम के साथ रहे और जब यह शरीर छुटे, तो ऐसी जगह छूटे, जहाँ पशु–पक्षियों के भोजन के काम आ सके। इसलिए सद्गुरु की खोज होनी चाहिए। यदि सद्गुरु मिल गया जीवन सफल हो गया तभी तो उन्होंने कहा कि एकै नाँव अलाह का पढ़ि हाफिज हूवा। हाफिज होने के लिए, विद्वान होने के लिए, जीवन को सार्थक करने के लिये एक अल्लाह का नाम पढ़ना काफी है। लेकिन उसे पढ़ कौन सकता है? वही जिसे प्रेम की पाती वाँचने का विवेक हो, बिना प्रेम एवं करुणा के वेद–पुराण–कुरान पढ़ना बेकार है।

वसुधैव कुटुम्बकम् के दर्शन के प्रेरक महापुरुष

दादू सर्वधर्म सद्भाव के प्रतीक थे, उन्होंने साम्प्रदायिक सद्भावना एवं सौहार्द को बल दिया। उनको हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही संप्रदायों में बराबर का सम्मान प्राप्त था। दोनों संप्रदाय के लोग उनके अनुयायी थे। आज भी दादूधाम में हर जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय के लोग बिना किसी भेदभाव के आते हैं। यह धाम जयपुर से 61 किलोमीटर दूर स्थित 'नरेगा' में है। यहां इस पंथ के स्वर्णिम और गरिमामय इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। यहां के संग्रहालय में दादू महाराज के साथ–साथ अन्य संतों की वाणी, इसी पंथ के दूसरे संतों के हस्तलिखित ग्रंथ, चित्रकारी, नक्काशी, रथ, पालकी, बग्घी, हाथियों के हौदे और दादू की खड़ाऊँ आदि संग्रहित हैं। यहां मुख्य उत्सव फाल्गुन पूर्णिमा को होता है। इस अवसर पर लाखों लोग जुटते हैं, जो बिना किसी भेदभाव के एक पंगत में भोजन करते हैं। विश्व मानव–वसुधैव कुटुम्बकम् के दर्शन के प्रेरक महापुरुष, सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक पाखंडों के खिलाफ आवाज उठाने वाले महान् समाज सुधारक एवं जन–जन को अध्यात्म की एकाकी यात्रा का मार्ग सुझाने वाले परम संत दादू दयाल इस जगत से 60 वर्ष के लगभग समय बिताकर 1660 ई0 के लगभग परमधाम को चले गये।

संत दादूदयाल का समतामूलक समाज दर्शन

भक्तिकाव्य का प्रवृत्ति दर्शन समाज दर्शन का प्रमुख उपादान है, जो कर्मभरे जीवन का आग्रह करता है और जिसे अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है। स्वयं कवियों ने भी इसे जिया है अपने दैनिक कार्म निष्पादित करते हुए, उच्चतर मूल्यों की कल्पना से। भक्ति ने निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति का कर्मभरा मार्ग चुना और उसे परिभाषित किया। इस प्रवृत्तिमार्गी दर्शन से भक्तिकाव्य की सामाजिक विश्वसनीयता में वृद्धि हुई।

दादूपंथियों में मान्यता है कि अठारह वर्ष की अवस्था में दादूदयाल को पुनः गुरू के दर्शन हुए और उन्हें प्रेरणा मिली कि जिस सत्य की प्राप्ति उन्हें हुई वह सत्य जनता को भी प्राप्त हो। इसी समय से दादूदयाल ने भगवद् चिंतन में अपना ध्यान केंद्रित किया और साधु संगति में सारा समय व्यतीत किया। इसी उद्देश्य से देशाटन किया।

संत दादूदयाल की विचारधारा कबीर से प्रभावित है। निर्गुण भक्त कवि होने पर भी उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप को मान्यता दी है। इसी प्रकार भक्ति को उन्होंने सहज भाव से अंगीकार किया है, किसी मतवाद की उलझन में वे नहीं पड़े हैं।

निर्गुण कविता अनेक कारणों के चलते कालांतर में पंथबद्ध होकर निष्प्रभावी भले ही बन गई हो, उसकी जो भी असंगतियाँ और सीमाएँ हों, तत्कालीन सामाजिक–साँस्कृतिक क्षितिज में उसका आविर्भाव और उसमें कबीर, नानक, दादू, नामदेव, रैदास जैसे संतों का योगदान एक बड़ी सामाजिक साँस्कृतिक उपलब्धि मानते हुए लिखा है, बड़ी उपलब्धि वह इसलिए है कि धर्म और भक्ति के क्षेत्र में ही सही, किंतु सामाजिक जीवन के बीच पहली बार वर्ग, वर्ण, जाति, नस्ल, धर्म और सम्द्रदाय के भेदों तथा बंधनों को अमान्य करते हुए मानव ह्रदय के एकात्म और भक्ति के संदर्भ में मानव मात्र की समानता को रेखांकित किया गया।

इसी संदर्भ में दादूदयाल का समतामूलक समाज दर्शन तत्कालीन ही नहीं समाकलीन सामाजिक–साँस्कृतिक स्थितियों में भी प्रासंगिक और सार्थक है और उनका अवदान रेखांकन योग्य है।

सामाजिक विचारों का आधुनिक समय में प्रांसगिकता

वर्तमान समय में संत दादूदयाल के सामाजिक विचार सामाजिक मानदण्ड है, जो कि सामाजिक जीवन के अन्तर्सम्बन्धों को परिभाषित करने में सहायक हैं। दादू ने सामाजिक विषमता से उत्पन्न समाज के बहुसंख्यक वर्ग की हताशा और निराशा को दूर करके उसमें नई स्फूर्ति और आशा का संदेश दिया जो प्रत्येक युग में बहुत महत्व रखता है। समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, बुराईयों का खण्डन करने और शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने में सहायक है। समाज में व्याप्त समानताओं व स्त्री–पुरूष दोनों को बराबरी का दर्जा देने की बात आज भी सार्थक है। दादू का पर्यावरण संरक्षण और जैव विविधता संरक्षण संबंधि विचार आज सही लगता है। दादू के अनुसार

जो व्यक्ति अपनी आजीविका स्वयं नहीं कमाता वह पापी और शोषक है। वह चाहे जितनी भी ज्ञान और भक्ति की बातें करता रहें। किन्तु श्रद्धा का पात्र नहीं हो सकता। दादू ने साम्प्रदायिक समन्वय का बहुत बड़ा प्रयास किया या यों कहें कि उनकी समस्त कविता के केन्द्र में सर्वाधिक कोई विचार निरन्तर आता रहा है तो वह यही कि हिन्दू और मुस्लमान, ईश्वर और अल्लाह एक हैं। राष्ट्र की एकता और अखण्डता को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से दादू ने राम और अल्लाह, हिन्दू व मुस्लिम के मध्य का अन्तराल मिटाने का प्रयत्न किया है। दादू के अनुसार मनुष्य की अस्तित्वगत विडम्बना है कि उसे रहना है कि एक ऐसी प्राकृतिक अवस्था के बीच, जिसका सम्पूर्ण तर्क मनुष्य की समझ से बाहर है या वह तर्क से परे की चीज है जिसके बारे में कोई पूरी तरह से विश्वसनीय भविष्य कथन संभव नहीं है। दादू के सामाजिक विचारों को वर्तमान शिक्षा के पाठय्क्रम में शामिल कर विद्यार्थियों में सामाजिकता का विकास किया जा सकता है।

संत दादूदयाल के सांस्कृतिक विचारों का आधुनिक समय में प्रांसगिकता

दादू के सांस्कृतिक विचारों में उन सभी आधुनिक विचारों का समावेश है जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण एवं उसके विकास के द्वारा राष्ट्र में सांस्कृतिक एकता का वातावरण बनाये रखने में सहयोगी होते है। दादू के अनुसार हमें भारतीय संस्कृति के संरक्षण पर बल देकर भारतीय सांस्कृतिक विचारों को प्रोत्साहित करना चाहिए एवं पाश्चात्य संस्कृति का अनुसरण नहीं करना चाहिए। सामाजिक समूहों की संस्कृति भिन्न–भिन्न हो सकती है किन्तु यदि उनमें एक दूसरे के प्रति आदर का भाव होगा तो उन समूहों में एकता एवं सद्भाव बना रहेगा। विद्यार्थियों को भारतीय सांस्कृतिक विचारों को विकसित करने हेतु संत दादू के सांस्कृतिक विचारों पर बल देना चाहिए।

संत दादूदयाल की रचनाएं

- साखी
- पद्य
- हरडेवानी
- अंगवधू

साखी, पद्य, हरडेवानी और अंगवधू इनकी रचनाएं हैं। दादू ने कई साखी और पद्य लिखे हैं। दादू की रचनाओं का संग्रह उनके दो शिष्यों संतदास और जगनदास ने हरडेवानी नाम से किया था। कालांतर में रज्जब ने इसका संपादन अंगवधू नाम से किया। दादू की कविता जन सामान्य को ध्यान में रखकर लिखी गई है, अतएव सरल एवं सहज है। दादू भी कबीर की तरह अनुभव को ही प्रमाण मानते थे। दादू की रचनाओं में भगवान के प्रति प्रेम और व्याकुलता का भाव है। कबीर की तरह उन्होंने भी निर्गुण निराकार भगवान को वैयक्तिक भावनाओं का विषय बनाया है। उनकी रचनाओं में इस्लामी साधना के शब्दों का बहुत प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा पश्चिमी राजस्थानी से प्रभावित हिंदी है। इसमें अरबी–फारसी के काफी शब्द आए हैं, फिर भी वह सहज और सुगम हैं।

निष्कर्ष

दादूपंथ के प्रवर्तक संत दादूदयाल मुख्यतः धर्म सुधारक और समाज सुधारक थे। जाति, कुल देशकाल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह करना धर्म है। धर्माचार अथवा नैतिकता समाजपरक है और धर्मसाधना व्यक्तिनिष्ठ समकालीन समाज में आत्मशुद्धि के द्वारा समाज सुधार तत्कालीन संतों का साध्य था और साधन था भक्ति। साधक और साध्य का एकीकरण साधना के माध्यम से सभी संतों ने किया और यही तत्कालीन संत दादूदयाल ने भी किया। मध्ययुग में अरूचि और संस्कार की प्रधानता थी। शासक और शासित, विजेता और विजित में बहुधा संघर्ष होता था, सामाजिक सामंजस्य बिगड़ जाता थ। संतुलन बनाए रखने के लिए तत्कालीन सामज सुधारक संत समन्वय की ओर उन्मुख होते थे। भक्ति आंदोलन इसी दिशा में अग्रसर रहा है। इसी परम्परा में हम कबीर को देखते हैं, और उन्हीं की शिष्य परम्परा में दादूदयाल आते हैं। दोनों का लक्ष्य एक था लेकिन तरीका जुदा था। इसका मूल कारण था दोनों की स्वभावगत विशेषता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक लेखिकाओं के नगरिय परिवेश के उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–1994।
2. आठवें दशक का हिन्दी कविता में सामजिक बोध : डॉ. नामदेव, नान्देडी, अतुल प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–1989।
3. आधुनिक हिन्दी कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ : डॉ. ज्ञानचन्द शर्मा, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण–1996।
4. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि : डॉ. रामदरश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–1980।
5. श्री दादू दयाल जी की वाणी (सन 1991) – संपा. श्री मंगलदास स्वामी, प्रकाशक श्री लक्ष्मीनारायण चिकित्सालय, जयपुर।
6. श्री दादू महाविद्यालय रजत जयन्ती ग्रन्थ (सन 2009) – श्री दादू महाविद्यालय, मोतीडूंगरी, जयपुर।
7. चतुर्वेदी, पं. परशुराम (संवत 2023) – दादू दयाल ग्रन्थावली, ना.प्र.सभा, वाराणसी।
8. चतुर्वेदी, पं. परशुराम (संवत 2058) – हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास भाग–4, ना.प्र.सभा, वाराणसी।
9. वडथ्वाल, डॉ. पीताम्बर दत्त (संवत 2000) – हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, अवध पब्लिसिंग हाउस, लखनऊ।
10. वासुदेव पी.जी., संग्रथन मासिक पत्रिका मार्च (2014) हिन्दी विद्यापीठ (केरल) तिरूवन्तपुरम, लेख – ''अब और नहीं : दलित उत्पीड़न के खिलाफ सबल प्रतिरोध''।
11. संपादक, वासुदेव पी.जी., संग्रथन मासिक पत्रिका (जुलाई 2013) हिन्दी विद्यापीठ केरल, लेख– ''रामचरित मानस में सामाजिक जीवन''।

❖◆❖